International Journal of Research
Special Issue for Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 03 Issue 20
December 2016

प्राचीन भारत में सेना नामकरण एवं परिभाषा (1500 ई॰ पू॰ से 600 ई॰ पू॰)

नाम : बजरंग लाल
शोधर्थी
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय
अस्थल बोहर, रोहतक
मो. न. 9813205502

शोध – आलेख सार :–

इस आलेख के माध्यम से शोधार्थी द्वारा प्राचीन भारत में सेना के नामकरण एवं उसके लिए प्रयुक्त अनेक नामों जैसे बल, अनीक, अनीकिनी, गुल्म, गुल्मीन, ध्वजिनी, पताकिनी, वाहिनी, वरुथ, वरुथिपी, पृतना, कटक, चक्र, चमू, चतुरंग, दण्ड आदि पर प्रकाश डाला गया है। लेखक ने 1500 ई.पू. से 600 ई. पू. तक के प्रमाणों का अध्ययन करके आलेख के माध्यम से सटीक ढंग से समझाने का प्रयास किया है जिसमें वह पूर्णतया सफल रहे हैं। प्राचीन भारत में सेना के बारे में संक्षेप में लिखकर ज्यादा समझाना शोधार्थी के गहन अध्ययन का नतीजा है। उनका यह छोटा सा आलेख गागर में सागर के समान है।

मूल शब्द : बल, अनीक, अनीकिनी, गुल्म, गुल्मीन, ध्वजिनी, पताकिनी, वाहिनी, वरुथ, वरुथिपी, पृतना, कटक, चक्र, चमू, चतुरंग, दण्ड

भूमिका :

प्राचीन भारतीय साहित्य में सेना के लिए अनेक शब्दों जैसे बल, अनीक, अनीकिनी, गुल्म, गुल्मिनी, ध्वजिनी, पताकिनी, वाहिनी, वरुथ, वरुथिपी, पृतना, कटक, चक्र, चमू, चतुरंग, दण्ड आदि का प्रयोग हुआ है। सेना के संदर्भ में महाभारत में कहा गया है कि पाँच सौ हाथियों, पाँच सौ रथों की एक सेना होती है। दस सेनाओं की एक पृतना होती है और दस पृतनाओं की एक वाहिनी होती है। इसके अतिरिक्त सेना, वाहिनी, पृतना, ध्वजिनी, चमू, वरुथिनी और अक्षौहिणी इन पर्यायवाची नामों द्वारा भी सेना का वर्णन किया गया है।[1] वास्तव में सेना को विभिन्न, नामों से परिभाषित किया गया है।

बल :– शत्रुओं का हनन करना

अनेक स्थानों पर प्राचीन ग्रन्थों एवं साहित्यों में सेना को बल भी कहा गया है।[2] ष्बलष् शब्द की उत्पत्ति 'वृण' धातु से हुई है जिसका अर्थ होता है हनन करना।[3] अर्थात जिसके द्वारा शत्रु अथवा शत्रुदल का हनन होता है उसे ष्बलष् नाम से पुकारा जाता था अर्थात् जिस समूह के द्वारा हम शत्रुदल का पराभव तथा संहार करते हैं तथा जिससे शत्रु के बल का समापन होता है उसे बल कहते हैं। महर्षि मनु ने भी दण्ड के बाह्य रूप को सेना अथवा बल बताया है। मनु ने इस ओर संकेत किया है कि राजा का अपना बल षड्ंगी होता है परन्तु उन्होंने ऐसा कहीं भी स्पष्ट नहीं बतलाया है कि बल के ये छः अंग कौन–कौन से हैं।[4] महाभारत में पाँच प्रकार के बलों का उल्लेख मिलता है – 1. बाहुबल, 2. अमात्यबल, 3. धन अथवा कोषबल, 4. अभिजात बल तथा 5. प्रज्ञाबल। इन पाँचों प्रकारों में बाहुबल सर्वापेक्षा निम्न तथा प्रज्ञाबल सर्वश्रेष्ठ है।[5] इन पाँच प्रकार के बलों से युक्त राजा सम्पूर्ण पृथ्वी पर राज्य कर सकता है।[6] कौटिल्य ष्बलष् के 6 प्रकारों की चर्चा करते हैं – 1. मौलबल 2. मृतबल 3. श्रेणीबल 4. मित्रबल 5. अमित्रबल और 6. आटबीबल। कौटिल्य के समान कामान्दक ने भी छः प्रकार के बलों का उल्लेख किया है तथा यह भी बताया है कि उत्तर की अपेक्षा पूर्व बल क्रमशः महत्त्वपूर्ण है।[7] शुक्र ने सप्तांग राज्य का एक प्रधान अंग बल को माना है जिसके आधार पर मनुष्य निश्चिन्त होकर कार्य कर डालता है, उसे शुक्र ने बल की संज्ञा प्रदान की है।[8] शुक्र भी छः प्रकार के बल मानते हैं तथा इन बलों को वे 1. शारीरिक बल 2. आत्मिक बल 3. सैन्य बल 4. अस्त्र बल 5. बुद्धि बल और 6. आयु बल के नाम से सम्बोधित करते हैं।[9] इन सभी बलों से सम्पन्न राजा को वे साक्षात विष्णु मानते हैं।[10] शुक्र के विचार से बल के बिना मनुष्य छोटे–छोटे शत्रु को भी विजय करने में समर्थ नहीं हो सकता।[11] सोमदेव सूरी ने भी सैन्यबल का उल्लेख करते हुए उसके 6 भेद बतलाये हैं।[12] चण्डेश्वर ने बल के सन्दर्भ में चतुंरग बल का उल्लेख किया है। इन सब उद्धरणों में बल का अर्थ शत्रु हनन अथवा नाश से है। इस प्रकार बल शक्तिसूचक शब्द है जिसका कार्य शत्रुओं का हनन करना है। इस प्रकार स्पष्ट है

कि बलवान राजा अपनी प्रजा की रक्षा करता है, तथा अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है।

अनीक एवं अनीकिनी

अनेक संदर्भो में प्राचीन ग्रन्थ एवं साहित्य में सेना शब्द के लिए अनीक शब्द का प्रयोग हुआ है।[13] अन्+ईकम् से अनीक शब्द की उत्पत्ति हुई है। ऋग्वेद में अनीक संघ अथवा समूह के रूप प्रयुक्त हुआ है।[14] प्रायः अनीक शब्द अथर्ववेद में सेनार्थक समूह के रूप में ही प्रयुक्त हुआ है।[15] इसमें शत्रु को नष्ट करने वाले सैनिक रहते थे। इस प्रकार के दुश्मन सेना को नष्ट करने वाले सैनिकों का प्रभाव सर्वविदित था।[16] अनीक का प्रत्येक सैनिक युद्ध के समय में बहुत उग्र रूप धारण करता था।[17] इस प्रकार की सेना अर्थात अनीक का निर्माण महायुद्ध के लिए शत्रु पर हमला करने वाले तेजस्वी सैनिकों से हुआ है। वे सैनिक एक साथ मिलकर अथवा संघ बनाकर आक्रमण करते हैं और युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए शक्ति प्रदर्शित करते हैं।[18] शक्ति प्रदर्शन करने के पश्चात् ये बहादुर सैनिक विजयश्री प्राप्त करते थे।[19] श्री सातवलेकर ने अपने अथर्ववेद के भाष्य में अनीक शब्द को आगे बढ़ने वाला माना है चूँकि सेना आगे निरन्तर बढ़ती जाती है अतः उन्होंने इसे अनीक कहा। महाभारत में ष्अनीकष् सेना की एक छोटी टुकड़ी के रूप में उल्लेखित है। अनीक में सैनिक एक साथ युद्धाभ्यास करते थे तथा शत्रु पर विजय प्राप्त करने हेतु अनेक योजनाओं को मूर्त रुप देते थे।

अनीकिनी :

अनीकिनी शब्द भी सेनार्थक शब्द के रूप में प्रयुक्त होता था।[20] अनीक शब्द को स्त्रीलिंग में अनीकिनी कहा गया है। सेना की एक टुकड़ी का नाम अनीक है।[21] अनेक अनीकों के समूह को अनीकिनी कहते हैं। महाभारत में अनीकिनी की संख्या इस प्रकार दी गई है – हाथी स्वार 2187, अश्वा स्वार 6561 और पैदल सैनिक 10935 अर्थात् 21870 की अनीकिनी होती है। दूसरे शब्दों में अक्षौहिणी के दशवें हिस्से को अनीकिनी कहते हैं। इस प्रकार से अकेला–अकेला वीर पृथक्–पृथक् जितना पराक्रम प्रकट कर सकता था उससे अत्यन्त अधिक पराक्रम एवं वीरता वह

सेना विभाग के साथ रहकर सम्मिलित रूप से आक्रमण करने पर प्रकट कर सकता था। इसलिए अनीकिनी नाम सेना समूह के रूप में प्रयुक्त हुआ है। अर्थात समूह में आक्रमण करके शत्रु पर विजय पाना अधिक सरल होता था।

दण्ड :

शक्ति द्वारा शत्रु दमन अर्थात दोषी को सजा देना दंड कहलाता है। प्राचीन भारतीय साहित्य में सेना को ष्दण्डष् भी कहा गया है।[22] दण्ड शब्द का प्रयोग कई अर्थों में होता रहा है, सामान्य अर्थ में दण्ड शक्ति अथवा सेना का प्रतीक है। भारतीय विद्वानों राज्य की शक्ति के प्रतीक सेना के सन्दर्भ में बल शब्द का प्रयोग किया है। महर्षि मनु राज्य की सात प्रकृतियों में दण्ड को छठा स्थान प्रदान करते हैं। वे दण्ड का महत्त्व राज्य के अन्य अंगों के समान प्रदान करते हैं। इनमें कोई छोटा–बड़ा नहीं है।[23] दण्ड की महत्ता प्रदान करते हुए मनु कहते है कि दण्ड सम्पूर्ण प्राणियों का रक्षक, ब्रह्म के तेज के समान एवं धर्म का पुत्र है, उसका निर्माण ईश्वर ने किया है।[24] दण्ड सम्पूर्ण स्थावर और जंगम को भोग का प्राप्त करने वाला।[25] प्राणियों को स्वधर्म पालन के निमित्त बाध्य करने वाला,[26] सम्पूर्ण प्रजा को अनुशासन में रखने वाला, प्राणियों कि दिन रात रक्षा करने वाला,[27] देवदानव, गन्धर्व, राक्षस, पशु, पक्षी, सर्प आदि सभी प्राणियों को उसके अनुकूल भोग की व्यवस्था करने वाला तथा समाज में वर्णाश्रम धर्म की संस्थापना करने वाला है।[28] दण्ड के अभाव में लोग अच्छे मर्यादित आचरण को छोडकर दुष्ट आचरण को अपनाकर कर्त्तव्य पालन से विमुख हो जाते हैं और सम्पूर्ण मर्यादाएँ नष्ट हो जाती है।[29] इस प्रकार मनु ने दण्ड शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया है। मनु इस जगत की स्थिति दण्ड के अधीन मानते हैं।[30] उन्होंने दण्ड के बाह्य रूप को सेना अथवा बल कहा है। महाभारत में भीष्म ने दण्ड को राज्य का एक प्रधान अंग मानते हुए दण्ड के दो स्वरूप स्वीकार करते हैं – 1. प्रकाश दण्ड और 2. अप्रकाश दण्ड। प्रकाश दण्ड सेना अथवा बल है जिसके आठ अंग हैं।[31] अप्रकाश दण्ड के अनेक भेद हैं। अतः निष्कर्ष रुप से कहा जा सकता है कि प्रजा तथा शत्रुओं पर नियंत्रण रखने हेतु दंड रुपी विद्यान अत्यत आवश्यक है।

ध्वजिनी :

अनेक स्थानों पर सेना को ध्वजिनी कहा गया है।[32] सेना के लिए ध्वजिनी शब्द का प्रयोग संभवतः सेना में पर्याप्त ध्वजाएँ रहने के कारण ही हुआ है। ध्वजिनी शब्द ध्वज+इनि+डीप् से ष्ध्वजिनीष् सिद्ध होता है। शब्दकल्पद्रुम तथा वाचस्पत्यम् के अनुसार एक ही ध्वजा जिस सेना में हो उसे ध्वजिनी कहते हैं ''ध्वजा अस्ति अस्या इति''। मानक हिन्दी कोष दूसरे खंड में बताया गया है कि ध्वजिनी सेना के उस भाग को कहते हैं जिसमें वाहिनी से सैनिकों की संख्या द्विगुणी हो। स्पष्ट है अपने ध्वजा के बहुलता के कारण ही सेना ध्वजिनी कहलायी। प्राचीन काल में प्रत्येक स्वतन्त्र सम्राट का एक अपना ध्वज होता था तथा उसके सामन्त नरेशों के ध्वज भी भिन्न–भिन्न हुआ करते थे। युद्धस्थल में वे समस्त नरेश अपने ध्वजाओं के साथ जाते थे। वहाँ उनकी पहचान प्रायः ध्वजों के रंग तथा ध्वज चिह्न से हुआ करती थी। इस प्रकार से अनेक ध्वजाओं के प्रयोग के कारण ही सेना ध्वजिनी कहलायी।

पताकिनी :

प्राचीन ग्रंथों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि ष्पताकिनीष् शब्द भी सेना का वाचक है। इसकी संधि विच्छेद है – पताका + इनि + डीप्। प्राचीन कालीन सेना में पताका होने का बहुत बड़ा गुण था। पताकाओं के बाहुल्य के कारण ही सेना को पताकिनी कहा गया है। प्रत्येक सेना अपने पताकाओं को धारण करती है अतः उसे पताकिनी कहा जाता था। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वास्तव में पताकिनी ध्वजिनी का ही पर्यायवाची–समानार्थक शब्द है।

वरुथिनी :

प्राचीन भारतीय साहित्य में वरुथिनी शब्द का प्रयोग भी सेना शब्द के लिए हुआ है।[33] अमरकोष में सेना को वरूथिनी कहा गया है।[34] वरुथिनी वरुण शब्द से निष्पन्न होता है वरुथ + इनि + डीप त्र सेना। शत्रु से प्रहार से रक्षार्थ रथ पर जो आवरण लगाया जाता था उसे वरुथ (वृ+उथन) कहते हैं। जिसमें इस प्रकार आवरणों से युक्त रथ समूह हों, उसे वरुथिनी संज्ञा दी जाती है। प्रसिद्ध है कि प्राचीन काल में शत्रु के प्रहार से रथ की रक्षा करने के लिए वरुथ नामक आवरण

लगाया जाता था,[35] जो प्रायः चर्म से निर्मित किया जाता था। आवरण युक्त इस प्रकार के अनेक अथवा असंख्य रथों के कारण सेना को वरुथिनी की संज्ञा प्रदान की जाती थी। वाचस्पत्यम् और शब्दकल्पद्रुम में वरुथिनी की एक भिन्न परिभाषा देते हुए कहा गया है कि जिससे शरीर का रक्षण हो वह वरुथ है।

अतः हम कह सकते हैं कि यह सेना शब्द का ही पर्यायवाची – समानार्थक शब्द है।

पृतना :

यह सैनिको का एक शक्ति समूह होता था जो शत्रु के विनाश का कारण होता था। प्राचीन ग्रन्थों एवं साहित्यों में पृतना शब्द सेनावाचक के रूप में प्रयुक्त हुआ है।[36] पृतना शब्द की सिद्धि इस प्रकार है – पृ+तन्+टाप् त्र पृतना। जिस समूह में योद्धाओं की अधिकता हो उसे पृतना कहते हैं।[37] पृतना के वे सभी सैनिक देवताओं के समान युद्ध करने वाले, योद्धाओं के समान शत्रु पर हमला करने वाले, शौर्य प्राप्त करने वाले, वीरों के समान सेनाओं में बहादुरी का प्रदर्शन करने वाले, संसार एवं सब प्राणियों को भयभीत करने वाले, राजाओं के समान तेज प्रकट करने वाले होते थे।[38] ष्पृतनाष् के यह सभी सैनिक संग्राम में दृढ़ राज भक्ति या स्वामी भक्ति रखने वाले होते थे।[39] पृतना के समस्त सैनिक अपने विभागों में विभाजित रहते थे। शत्रु पर वे सम्मिलित रूप में आक्रमण कर उनका नाश करते थे।[40] पृतना का हर एक सैनिक शूरवीर और शत्रु का विनाश करने वाला होता था।[41] सम्मिलित रूप से आक्रमण करने का अर्थ है पृतना। यह सेना (पृतना) अनुशासन युक्त भी होती थी। पृतना शब्द कहीं संग्राम तथा कदाचित शत्रु सेना के लिए प्रयोग हुआ है।[42] यजुर्वेद के एक प्रसिद्ध भाष्यकार पं० श्रीपाददामोदरसातवलेकर महोदय ने बलवान सैन्य विद्या से सुशिक्षित वीर मनुष्यों के समूह को पृतना कहा है।[43] विश्वेसरानन्द वैदिक संस्थान से प्रकाशित अथर्ववेद के एक मन्त्र की व्याख्या में कहा गया है कि संग्राम में शत्रु विजय की कामना से जो प्रयत्न, अभ्यास, अभिनव करने का उद्योग करे वह पृतना है।[44] शब्दकल्पद्रुम में पृतना सम्पूर्ण सेना के अर्थ में नहीं बल्कि सेना का एक लघु समूह (संख्या विशेष त्र सीमित संख्या) के रूप में ही

दर्शाया गया है परन्तु कभी पृतना सीमित संख्या (संख्या विशेष) होते हुए भी उसमें सेना के सभी गुण रहने के कारण महती सेनार्थक रूप में भी प्रयुक्त हुआ है।[45] इस प्रकार पृतना वह वीर समूह (सेना) है जो शत्रु सेना से प्रतिस्पर्द्धा रखते हुए उसके पराक्रम का नष्ट करने के लिए हर समय प्रयत्नशील रहता है। यह एक ऐसा संगठन है जो संगठित होकर शत्रु का समूल विनाश कर देता है।

चक्र :

सेना को चक्र भी कहते है। शब्दकल्पद्रुम चक्र को सेना का अथवा युद्ध का एक तरीका चक्र शब्द का प्रयोग शस्त्रास्त्र के रूप में भी हुआ है। वाचस्पत्यम् में चक्र शब्द के तीन भेद बतलाये गये हैं– उत्तम, मध्यम तथा अधम। सेना के भी तीन भेदों का निरूपण किया गया है 1. उत्तम 2.मध्यम और 3.अधम। चक्र शब्द का सेनार्थक रूप में प्रयोग करते हुए विष्णुपुराण में कहा गया है कि महाराज सगर दिग्विजय के उपरान्त अपनी राजधानी में आकर अप्रतिहत सैन्य से युक्त हो इस सम्पूर्ण सप्तद्वीपवती पृथ्वी का शासन करने लगे।[46]

चमू :

शत्रु दमन करने वाली सेना को चमू कहा गया है। चमू शब्द का प्रयोग सेना के अर्थ में प्राचीन ग्रन्थों में हुआ है। यद्यपि महाभारत 'चमू' को सेना का एक अंग अथवा संस्था विशेष के रूप में ही उल्लेखित करता है। तथापि 'चमू' शब्द का प्रयोग महाभारत तथा अन्य ग्रन्थों में सम्पूर्ण सेना के रूप में हुआ है। शब्द कल्पद्रुम के अनुसार नाश करने अथवा भक्षण करने के अर्थ में जो शत्रुओं को विनष्ट करे वह चमू है। इस प्रकार से शत्रुओं को पराजित अथवा पराभव करने के साथ–साथ जो उनके अस्तित्व को भी मिटा दे (चमयति–विनष्ट कर दे) वह चमू कहलाता है।

चतुरंग :

चतुरंग सेना जिस राजा के पास हो उस पर कोई दूसरा पड़ोसी राजा आक्रमण करने की गलती कभी नहीं करता। चतुरंग भी सेना शब्द के लिए प्राचीन भारतीय साहित्य में प्रयुक्त होता है। चतुरंग का अर्थ सेना के चार प्रमुख भागों से है जिसमें अश्व, हाथी, रथ, पैदल सैनिक हों। इस प्रकार से रथस्वार, अश्वस्वार,

हाथीस्वार और पैदल योद्धाओं से मिलकर बना समूह जो शत्रु सेना को पराजित करता है, उस पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न करता है उसे चतुरंगिनी सेना कहते हैं। डॉ० श्यामसुन्दर दास के शब्दों में भारतीय युद्ध कला में सेना के चार अंग माने जाते थे – पदाति, अश्व, गज और रथ। इन अंगों से पूर्ण समूह सेना कहलाता था।[47]

वाहिनी :

वैदिक तथा वैदिकोतर साहित्य में अनेक स्थानो पर सेना को वाहिनी भी कहा गया है।[48] वाहिनी शब्द की उत्पत्ति निम्न प्रकार से की जाती है, वाह + इनि + डीप त्र वाहिनी। शब्दकल्पद्रुम के अनुसार वाह का अर्थ है त्र वाहन अतः घोड़ा आदि से युक्त सेना को वाहिनी कहते हैं। 7 वाचस्पत्यम् के अनुसार 6 हाथी, अश्व, रथ और पैदल सैनिकों से बाहुल्य से जो पृथ्वी को प्रकम्पित करती रहे वह वाहिनी है। जिस प्रकार नदी पानी को ढ़ोती है उसी प्रकार सेना रथ, अश्व, हस्ति और पदाति सेनाओं को ढोने के कारण वाहिनी कही गयी है। 9 जिस प्रकार नदी बहती है उसी प्रकार सेना गति करते हुए आगे बढ़ती जाती है, इस कारण भी उसे वाहिनी कहा जा सकता है। यद्यपि महाभारत तथा शब्दकल्पद्रुम वाहिनी को सेना का एक भाग अथवा अंश मानते हुए उसे संख्या विशेष से सीमित कर देते हैं परन्तु वाहिनी शब्द प्राचीन भारतीय साहित्य एवं ग्रन्थों में कई बार सम्पूर्ण सेना के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अतः हम प्रयाण करती हुई चतुरंगिनी सेना को वाहिनी कहते हैं।

गुल्म तथा गुल्मिनी :

गुल्म भी सेना के पर्यायवाची के रूप में भारतीय साहित्य में प्रयुक्त हुआ है।[49] गुल्म शब्द की उत्पति गुड् धातु से हुआ है। गुड् (रक्षण करना या वेष्टित करना) + मक् हो जाने पर 'ड' का ल हो जाता है। प्राचीन भारत में गुल्म उस सेना की टुकड़ी को कहते थे जो प्रधान पुरुषों से युक्त रहती थी। रक्षण का कार्य करती थी।[50] महाभारत के अनुसार जिसमें नवरथ, नवगज, सत्ताईस अश्व तथा पैतांलीस पदाति सैनिक हों तो इस प्रकार के यौगिक संख्या को गुल्म कहते हैं। यद्यपि महाभारत में गुल्म सेना की संख्या सीमित कर दी गई है, परन्तु महाभारत में

भी तथा अन्य साहित्यों में भी ष्गुल्मष् का प्रयोग सेना के अर्थ में हुआ है। गुल्म के अतिरिक्त सेना के लिए गुल्मिनी शब्द भी प्रयोग हुआ है जो निश्चय ही गुल्म से बना हुआ है। अनेक गुल्मों से युक्त सेना को गुल्मिनी कहते थे। इस प्रकार से वीर पुरुषों, यौद्धाओं का समूह जो शत्रु सेना को पराजित करे वह गुल्म अर्थात सेना है। इसी प्रकार के अनेक सेनाओं से युक्त सेना को गुल्मिनी अर्थात सेना कहा जाता था।

कटक :

प्राचीन भारत में सेना साहित्य को ष्कटकष् भी कहा गया है।[51] कटक शब्द की उत्पत्ति 'कट' धातु से हुई है। वर्षा आवरण अर्थ में प्रयुक्त होने वाली 'कट' धातु से 'वुन्' (अक्) प्रत्यय होने पर 'कटक' शब्द की उत्पत्ति होती है। श्कटति वर्षाति अस्मिन्निति मेघाः इति शब्दकल्पद्रुमःश।[52]

सेना :

स+इन्+आ से बना है सेना व स्वामी अथवा राजा के साथ शत्रुओं का विनाशक जो वीर दल हो उसे सेना कहते हैं।[53] ऋग्वेद में सायण के अनुसार शक्तिशाली शत्रुओं के समूह का पराभव अथवा पराजित करने वाला समूह ही सेना हैं।[54] 'सेना' शब्द की संधि–विच्छेद करते हुए निरुक्तकार यास्क कहते हैं कि स + इना अर्थात् स्वामी अथवा सेनापति से युक्त समूह ही सेना कहलाती है। समान गति से निरन्तर बढ़ते रहने के कारण भी उसे सेना संज्ञा से अभिहित किया गया है।[55] सायण भाष्य के ऋग्वेद के एक अन्य मंत्र के अनुसार धन प्राप्ति के लिए शत्रु के विविध सेनाओं का विदारण करने वाला समूह ही सेना है।[56] युद्ध में शत्रु सेना को पराजित करने वाले ये पुरुष शूर वीर होते थे।[57] वे वीर सैनिक अपने बल से तथा साहस से युक्त रहते थे, वे पृथ्वी लोक और आकाश लोक में युद्ध करने में निपुण थे अर्थात् युद्ध कर्म में समर्थ रहते थे। इन वीरों के अपने तेज के साथ रहने से पृथ्वी और आकाश में कोई प्रतिबन्ध नहीं रहता था।[58] अर्थात् ऐसे शूरवीर सैनिक रहने पर उस राष्ट्र की प्रगति में कोई किसी तरह की रुकावट नहीं आ सकती थी। प्रतिबन्ध उत्पन्न होने पर ये सैनिक उसे दूर करते थे।

पं० रामदीन पाण्डेय के अनुसार संग्राम के लिए अधिक मनुष्यों के सशस्त्र, संग्रहित समुदाय को सेना कहते हैं।[59] परन्तु पाश्चात्य विद्वान मैकडानेल और कीथ महोदय के विचार से सेना शब्द का प्रारम्भिक अर्थ क्षेप्यास्त्र था। उनका यह विचार ऋग्वेद के सैनेव सृष्टा (क्षेप्यास्त्र के समान विसृष्ठ) और सेनांग (वाण के समान तीव्रगामी) शब्दों पर आधारित है।

ऊपर वर्णित प्रसंगों में सेना का अर्थ भले ही क्षेप्यास्त्र रहा हो किन्तु ऋग्वेद[60] और अथर्ववेद के कई प्रकरणों में यह शब्द सैनिक समुदाय को सांकेतिक करता है।[61] अथर्ववेद में बहुवचन में सशस्त्र सैनिकों की टुकड़ियों के लिए संग्राम शब्द का प्रयोग मिलता है।[62] अथर्ववेद के एक प्रकरण में यह शब्द शान्ति व युद्ध के समय की सभा का भी द्योतक है।[63] वेदों के अतिरिक्त महाकाव्यों में भी सेना के लिए अनेक शब्द जैसे समूह अथवा संघ आदि प्रयोग हैं। महाभारत में सेना के लिए पृतना, चमू, वाहिनी, ध्वजिनी, अक्षौहिणी आदि शब्द प्रयुक्त हुए है तथा सेनाओं की संख्या का विवरण भी दिया गया है। महाकाव्यों के पश्चात् परवर्ती साहित्य एवं अभिलेखों में भी सेना शब्द का प्रयोग सस्त्रधरी , संगठित वर यौद्धाओं के संघ के रुप में ही हुआ है। सेना शब्द की परिभाषा जर्मन दृष्टिकोण से करते हुए पं० रामदीन पाण्डेय जी का कथन है कि शकिसी राज्य के अधीन समग्र सशस्त्र प्रशिक्षित सैनिकों की जमान सेना है।श[64] हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक श्यामसुन्दरदास के अनुसार युद्ध की शिक्षा पाए हुए और अस्त्र–शस्त्रों से सजे हुए मनुष्यों का बड़ा समूह सेना होता है।

सारांश :–

अतः हम कह सकते है कि सेना के लिए प्राचीन भारत में सैन्य, बल, दण्ड, पृतना, वाहिनी आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। सेना राज्य की सैन्य शक्ति का सूचक है। यही कारण है कि सेना का राज्य की सुरक्षा तथा शान्ति व्यवस्था बनाने में महत्त्वपूर्ण स्थान था, सेना के संगठन के लिए राष्ट्र के समाज से वीर अथवा

योग्य पुरूष ही लिए जाते थे। आर्यों ने सर्वप्रथम समाज का विभाजन ब्राह्मण और क्षत्रिय दो ही वर्णों में किया था। जिससे यह जानकारी प्राप्त होती है कि बौद्धिक बल से युक्त विद्वानों को छोड़कर अन्य सभी समर्थ व्यक्ति आवश्यकता पड़ने पर सैनिक रूप में संगठित हो जाते थे। बाद के काल में युद्ध के लिए मनुष्य का एक–एक समूह तैयार किया जाता था जिसे सेना कहते थे। यही कारण था कि वैदिक महर्षियों ने सेना को संघ एवं समूह के रूप में परिकल्पित किया। क्योंकि यह समूह शत्रु पर आक्रमण करने के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता था, द्रव के समान बहता चलता रहता था, शत्रुओं पर आक्रमण कर उसे नष्ट करता था, युद्ध में शत्रुओं के सैनिकों को मार गिराता था अतः अपने इन्हीं गुणों के कारण ऐसा समूह सेना कहलाता था। इस प्रकार के गुणों से ओत–प्रोत सेना की परिकल्पना वैदिक युग में भी की गई थी। ऋग्वेद के अनुसार जिस समूह में सक्रियता, गतिशीलता एवं मारने के साथ–साथ शत्रु को कष्ट देने का गुण हो, नष्ट करने का गुण हो उसे 'सेना' कहते हैं। इस परिभाषा में शस्त्र शक्ति द्वारा शत्रु पर नियंत्रण की भावना प्रकट होती है। शत्रु पर विजय प्रायः सशस्त्रों से ही सम्पन्न होता है। उपरोक्त वर्णन के आधार पर सेना को परिभाषा करते हुए कहा जा सकता है कि सेना योग्य, वीर, निपुण, शस्त्रधारी सैनिकों का वह समुदाय है जो शत्रु पर आक्रमण करने के लिए तथा शत्रु द्वारा आक्रमण होने पर आत्मरक्षा के लिए गति (प्रयाण) करता है और बौद्धिक क्रिया–कलापों से (सक्रियता से) शत्रु को नुकसान पहुंचाने के साथ–साथ उसे मारता अथवा उसके दलों को नष्ट करता है। संक्षेप में शत्रु सेना को नष्ट करने वाले शस्त्रधारी सैनिकों का संगठित समुदाय ही सेना है।

सन्दर्भ सूची

1. उद्योगपर्व, 155/24–25
2. ऋग्वेद, 8/24/30
3. ऋग्वेद, 1/62/4,
4. मनुस्मृति, 7/185

5. उद्योगपर्व, 37/52–54
6. वही, 37/52–55
7. कामान्दक नीतिसार, अध्याय 18। श्लोक 4
8. शुक्रनीति, 1/323
9. वही, 1/868
10. वही, 1/869
11. वही, 1/870
12. नीति वाक्यामृत, वार्ता० 12 समु० 12
13. अथर्ववेद, 4/27/7, ऋग्वेद, 1/168, 9, 8/20/12, यजुर्वेद, 82/4
14. ऋग्वेद, 8/20/12
15. अथर्ववेद, 4/27/7
16. सिंह सभापति, प्राचीन भारतीय सैन्य व्यवस्था, पृ03।
17. सिंह सभापति, पूर्वोक्त पृ04।
18. ऋग्वेद, 1/168/9
19. ऋग्वेद, 8/20/12
20. ऋग्वेद, 2/9/6
21. महाभारत, 15/7
22. महाभारत शन्तिपर्व, 40/59, मनुस्मृति, 15/7
23. मनुस्मृति – अ० 9 श्लोक 2।
24. वही, 14/7
25. वही, 22/7
26. वही, 15/7
27. वही, 18/7
28. वही, 23/7 तथा 17/7
29. वही, 24/7
30. वही, 15/7

31. महाभारत शान्तिपर्व 40/59
32. पंडित शकंर, रघुवंश, 7/190
33. पण्डित शंकर रघुवंश 11/58
34. अमरकोष, 2/8/78
35. इतिवंशपुराण, हरिवंशपर्व, 43/2–7
36. ऋग्वेद, 1/85/8, 7/56/22–23, 7/59/4, – यजुर्वेद, 9/37, अथर्ववेद, 6/97/1
37. ऋग्वेद, 3/34/4
38. ऋग्वेद, 1/85/8
39. ऋग्वेद, 6/75/5
40. ऋग्वेद, 7/56/2
41. ऋग्वेद, 7/56/23, 4/27/4।
42. ऋग्वेद, 2/40/5, 3/24/1
43. यजुर्वेद, 9/37।
44. अथर्ववेद, 6/97/1 ।
45. ऋग्वेद, 2!85/8, 7/56/22, 7/56/23, अथर्ववेद, 4/27/7
46. विष्णुपुराण, 4/3/49
47. सिंह सभापति, प्रर्वोक्त, पृ 06
48. महाभारत, 1/2/19–21, रघुवंश, 11/16
49. यजुर्वेद, 25/8, मनुस्मृति, 7/114, 7/190
50. मनुस्मृति, 7/114, कुल्लुकुमटट् की टीका मनुस्मृति, 790 ।
51. हितोपदेश, 1/332, महाभारत, 4/24/12।
52. हितोपदेश, 1/332
53. ऋग्वेद, 1/33/6, सायणभाष्य।
54. ऋग्वेद, 8/75/7, सायणभाष्य।
55. निरुक्त, 2/11।

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 03 Issue 20
December 2016

56. ऋग्वेद, 10/23/1, सायणभाष्य।
57. ऋग्वेद, 7/30/2, सायणभाष्य।
58. वही, 6/66/6
59. पाण्डेय पं. रामदीन, प्राचीन भारत में सांग्रामिकता, पृ. 99
60. ऋग्वेद, 1/33/6, 7/25/1, 9/86/1
61. अथर्ववेद, 3/11/1, 4/19/2, 5/21/9
62. वहि, 4/24/7।
63. वहि, 12/1/56,
64. पाण्डेय पं रामदीन, पूर्वोक्त, पृ. 99